स्वामी विवेकानंद

सूफ़ीवाद और इस्लाम

हुसैन रंदाथानी

ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन
नई दिल्ली -110024

प्रथम प्रकाशन:
2024
संख्या: 500

© All Rights Reserved

स्वामी विवेकानंद: सूफ़ीवाद और इस्लाम

लेखक:
हुसैन रंदाथानी

हिंदी अनुवाद
परवेज़ अहमद

कवर:
सलामुद्दीन खान

प्रकाशक:
ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन

संपर्क प्रकाशक:
ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन
डी-319, डिफेंस कॉलोनी
नई दिल्ली-110024
+91-11-47091095

मुद्रक:
इबारत पब्लिकेशन, नई दिल्ली
संपर्क करें: 9015698045
ibaratpub@gmail.com

Khusro Foundation
D-319, Defence Colony, New Delhi 110024
www.khusrofoundation.org
khusrofoundation.del@gmail.com

+91-9318431341
Khusrofounda
Khusro foundation
Khusro_foundation
Khusrofoundation

सूची

प्रस्तावना	5
स्वामी विवेकानंद: सूफ़ीवाद और इस्लाम	9
तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी के भारत में सूफ़ीवाद (अमीर ख़ुसरो के विशेष संदर्भ में)	25
भारतीय सूफ़ीवाद: सुधार और एकता की एक उत्कृष्ट कृति	35
ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन: एक नई पहल	52

© All Rights Reserved to Khusro Foundation

First Published in India by
KHUSRO FOUNDATION
D-319, Defence Colony, New Delhi-110024
+91-11-47091095
www.khusrofoundation.org
khusrofoundation.del@gmail.com

The views and opinions expressed in this book are the author's own and the fact are as reported by them, and the publishers are not in any way liable for the same

Khusro Foundation
Asserts the moral right to be identified the Publisher of this book

All right reserved. No part of this publication may be reproduced stored in a retrieval system, or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the publishers.

Typeset Setting 16x24 scale at
Ibarat Publication

Printed and Bound at
Global Trading Company

प्रस्तावना

ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन को अपने प्रकाशनों के बेहतरीन गुलदस्ते में एक और अमूल्य प्रस्तुति देते हुए गर्व हो रहा है। **“स्वामी विवेकानंद: सूफ़ीवाद और इस्लाम”** शीर्षक से इस पुस्तक का संकलन डॉ. हुसैन रंदाथानी द्वारा किया गया है। इस पुस्तक में लेखक ने इस्लाम और सूफ़ीवाद पर स्वामी विवेकानंद के विचार प्रस्तुत किये हैं जिसे डॉ. हुसैन रंदाथानी ने बड़ी मेहनत से इन्हें एकत्र और व्यवस्थित किया है।

इस पुस्तक का पहला अध्याय **“स्वामी विवेकानंद: सूफ़ीवाद और इस्लाम”** शीर्षक से है। यह सर्वविदित है कि स्वामी विवेकानंद ने वेदों का इस्लामी दृष्टिकोण से अध्ययन करने की आवश्यकता पर बल दिया था। यह अध्याय स्वामी विवेकानंद की इस्लाम की अवधारणा और इस्लाम के माध्यम से वेदों का अध्ययन करने के उनके दृष्टिकोण पर केंद्रित है।

दूसरा अध्याय **"तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी के भारत में सूफ़ीवाद (अमीर ख़ुसरो के विशेष संदर्भ में)** है: इस अध्याय में अमीर ख़ुसरो और उनकी शायरी पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है, जिसमें कहा गया है कि अमीर ख़ुसरो का हिंदुस्तान के प्रति प्रेम विभिन्न कारकों के कारण है। अमीर ख़ुसरो भारत की वनस्पतियों और जीवों, जलवायु और प्राकृतिक दृश्यों की खुले तौर पर सराहना करते हैं और इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि वे हिंदुस्तान पर गर्व करते हैं और कहते हैं कि पहले पैग़म्बर हज़रत आदम (अलै.) जन्नत से निकाले जाने के बाद हिंदुस्तान में ही उतारे गये थे।

तीसरा अध्याय "**भारतीय सूफ़ीवाद: सुधार और एकता की एक उत्कृष्ट कृति"** है, जो बताता है कि सुल्ह-ए-कुल (सभी के लिए शांति) का दर्शन एक न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था का आधार है। सूफ़ियों की तपस्या ने लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने काम किया। यह अध्याय भारत में सूफ़ीवाद के इतिहास, विकास और इस पवित्र भूमि में सूफ़ीवाद के फलने-फूलने में योगदान देने वाले कारकों का पता लगाने का एक सार्थक प्रयास है, जिसमें इस बात पर विशेष ज़ोर दिया गया है कि केवल सूफ़ीवाद ही दुनिया में शाश्वत शांति और सामंजस्य स्थापित कर सकता है।

मुझे आशा ही नहीं बल्कि विश्वास है कि यह पुस्तक इस्लाम, सूफ़ीवाद और स्वामी विवेकानंद की सही तस्वीर सामने लाने में बुनियादी किरदार अदा करेगी और हमारे पाठक इस पुस्तक से पर्याप्त लाभ उठाएँगे।

ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन ऐसे साहित्य को आगे लाने के लिए प्रतिबद्ध है जो प्रेम और सद्भाव फैलाने और एकता एवं विविधता को बढ़ावा देने में सफल हो। जैसा कि स्वामी विवेकानंद ने कहा था: **"मोहब्बत ज़िंदगी है और नफ़रत मौत है।"** तो आइए, हम सभी हर क़ीमत पर अपने देश और समाज में सद्भाव और शांति बनाए रखने का संकल्प लें और एक ऐसे समाज का निर्माण करें जहां हमारे दिलों में किसी भी इंसान और नागरिक के लिए मन में कोई नफ़रत न हो बल्कि केवल और केवल प्यार हो।

डॉ. हफ़ीज़ुर्रहमान

संयोजक,
ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन

स्वामी विवेकानंद
सूफ़ीवाद और इस्लाम

स्वामी विवेकानंद एक शांतिप्रिय और धार्मिक व्यक्ति थे जिनकी शिक्षाएँ प्रेम और भाईचारे का आह्वान करती थीं। स्वामीजी ने सनातन धर्म को आडंबरपूर्ण प्रथाओं से मुक्त करने का प्रयास किया और इसके आध्यात्मिक पहलुओं पर ज़ोर दिया। उनका मानना था कि ईश्वर को जानने और हिंदू धर्म की सार्वभौमिकता को महसूस करने का एकमात्र तरीक़ा वेदों और उपनिषदों का निष्पक्ष अध्ययन और उनकी शिक्षाओं का अभ्यास है। स्वामीजी की राय में, इस्लाम में ख़ुदा और रूहानियत (आध्यात्मिकता) की अवधारणा की उचित समझ के लिए वेदों और उपनिषदों का अध्ययन भी आवश्यक है। उनका पूर्ण विश्वास था कि हर धर्म की मूल मान्यताएँ एक ही हैं, उनमें कोई अंतर नहीं है।[1] लेकिन, दुर्भाग्य से, अतीत में कुछ लोग ऐसे भी हुए हैं जिन्होंने जानबूझकर स्वामीजी के इस दर्शन को ख़ारिज कर

दिया और स्वामीजी को इस्लाम विरोधी एक कट्टर हिंदू के रूप में प्रस्तुत किया। हालांकि इसके विपरीत स्वामी विवेकानंद एक बहुत ही विनम्र और सभी धर्मों का सम्मान करने वाले व्यक्ति थे। स्वामीजी स्पष्ट रूप से कहते हैं:

> "किसी भी समुदाय, किसी भी देश, किसी भी आस्था में पैदा हुए और पले-बढ़े हम उन सभी आध्यात्मिक विभूतियों को श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं जिन्होंने पारंपरिक रूप से हमें अपना संदेश दिया और सीधा रास्ता दिखाया, चाहे वे किसी भी जाति, जन्म स्थान और रंग के हों, हम उन सभी धर्म गुरूओं को सलाम करते हैं जिन्होंने मानव जाति की नि:स्वार्थ सेवा की है और कल्याणकारी कार्यों में सबसे आगे रहे हैं।"[2]

स्वामीजी को हिंदू होने पर गर्व था, जिसे उन्होंने शिकागो में विश्व धर्म संसद के दौरान अपने प्रसिद्ध संबोधन में खुलकर व्यक्त किया था। वह कहते हैं:

> "मुझे ऐसे धर्म से होने पर गर्व है जिसने दुनिया को सहिष्णुता और सार्वभौमिकता दोनों सिखाई है। हम न केवल सार्वभौमिक सहिष्णुता में विश्वास करते हैं, बल्कि हम मानते हैं कि सभी धर्म सही हैं।"[3]

धार्मिक मतभेदों के बारे में स्वामीजी कहते हैं:

> "ईश्वर को जानने के अनगिनत तरीक़े हैं। हो सकता है कि तुम्हारे और मेरे रास्ते बिल्कुल अलग हों, लेकिन

> हम सबकी मंज़िल एक ही है। यह विचार ख़तरनाक है कि सभी को एक ही धर्म का पालन करना चाहिए। जब सभी लोग धर्म के बारे में एक ही राय रखते हैं और हर कोई ईश्वर तक पहुंचने के लिए एक ही रास्ता खोजता है, तो यह रवैया बहुत विनाशकारी है क्योंकि यह धार्मिक विचारों और आदर्शों को नष्ट कर देता है। यह व्यर्थ है और हर किसी को इससे ख़ुद को बचाना चाहिए... दूसरों के धर्म को ग़लत तरीक़े से प्रस्तुत करने वाले कट्टर लोगों द्वारा शांति और प्रेम की बात करना व्यर्थ है। उनकी मीठी-मीठी बातें बेकार हैं। चाहे कोई ईसाई हो, बौद्ध धर्म का अनुयायी हो या इस्लाम धर्म को मानने वाला हो, किसी से लड़ने की बिल्कुल ज़रूरत नहीं है।"[4]

स्वामी विवेकानंद के 1893 के प्रसिद्ध भाषण के शताब्दी समारोह के सिलसिले में लंदन स्कूल ऑफ ओरिएंटल एंड अफ़्रीक़न स्टडीज़ ने नवंबर 1993 में एक विशेष कार्यशाला का आयोजन किया। इस कार्यशाला में सभी प्रतिभागी सर्वसम्मति से इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि स्वामीजी को कट्टर एवं इस्लाम विरोधी हिंदू के रूप में चित्रित करने की नापाक साज़िश निराधार एवं साक्ष्यों के विरुद्ध है। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के तपन रॉय चौधरी ने दावा किया कि स्वामी विवेकानंद वास्तव में उन बुद्धिजीवियों में से एक हैं जिन्होंने इंडो-इस्लामिक संस्कृति को भारतीय सभ्यता का अभिन्न अंग घोषित

किया है। स्वामी विवेकानंद की शिष्या सिस्टर निवेदिता बताती हैं कि स्वामीजी मुग़लकाल की कलात्मक विरासत के सच्चे प्रशंसक थे।[5]

स्वामी विवेकानंद अपने लेख "भारत का भविष्य" में लिखते हैं:

> "मुस्लिम शासन वास्तव में उत्पीड़ित और पिछड़े वर्गों के लिए स्वतंत्रता की संभावना लेकर आया। यही कारण है कि लगभग बीस प्रतिशत हिंदू आबादी ने इस्लाम धर्म अपना लिया। यह कहना कि इस्लाम तलवार के बल पर फैला, कोरी मूर्खता के अलावा और कुछ नहीं है।"

स्वामी विवेकानंद इस बात पर ज़ोर देते हैं कि वेदों में धार्मिक विविधता को अच्छा माना गया है। वह कहते हैं:

> "चाहे आप ईसाई हों, बौद्ध हों, यहूदी हों, हिंदू हों, मुस्लिम हों या किसी अन्य धर्म के अनुयायी हों, केवल वेद ही हैं जिनमें इन सभी पर प्रकाश डाला गया है और सभी पैग़म्बर इसी की अभिव्यक्तियाँ हैं।[6] उनके अनुसार उदारता और सहिष्णुता ही एकमात्र रास्ता है जिसके द्वारा सभी धर्मों को सम्मान की दृष्टि से देखा जा सकता है। हिंसा, रक्तपात और क्रूरता पर क़ाबू पाए बिना सुधार असंभव है। किसी भी प्रकार के सुधार के लिए व्यापक सहमति एक आवश्यक शर्त है जिसका पहला क़दम अन्य धर्मों को इज़्ज़त और सम्मान की दृष्टि से देखना है। भले ही हमारी बुनियादी मान्यताएँ

> अलग हों, मानवता के लिए हमसे यह अपेक्षा की जाती है कि हम धर्म और राष्ट्रीयता की परवाह किए बिना सभी की मदद करें। यही वह दर्शन है जिसका हम भारत में अनुसरण करते हैं। अतीत में, हिंदुओं ने मस्जिदें और चर्च बनाए। एक शांतिपूर्ण और धार्मिक समाज के निर्माण के लिए हमें यही सब करना होगा।"[7]

स्वामी विवेकानंद के गुरु रामकृष्ण परमहंस (1836-1886) ने भी धर्मों की सार्वभौमिकता के दर्शन को अपनाया। उनका प्रसिद्ध कथन है:

> "वास्तव में, सभी धर्म एक ही ईश्वर को मानने के अलग-अलग तरीक़े हैं।"

वह आगे कहते हैं:

> "मूर्ति पूजा, निराकार ईश्वर की अवधारणा, एकेश्वरवाद, कई देवताओं में आस्था एक ईश्वर तक पहुंचने के ही अलग-अलग रास्ते हैं।"[8]

रामकृष्ण परमहंस के शिष्य स्वामी विवेकानंद ने पूरे भारत की यात्रा की और इस्लाम और हिंदू धर्म के संबंध में मुस्लिम विद्वानों के साथ विस्तृत चर्चा की। जिसके बाद उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि इस्लाम और हिंदू धर्म के बीच केवल मामूली अंतर हैं जबकि दोनों की मूल मान्यताएं एक जैसी ही हैं। स्वामी विवेकानंद का मानना था कि राष्ट्रीय आदर्श वाक्य प्रकृति में हिंदू है क्योंकि यह प्राचीन काल के साधु संतों की शिक्षाओं से लिया गया था लेकिन इसके बावजूद वे

राष्ट्रीय आदर्श और भारतीय इस्लाम को परस्पर विरोधी नहीं मानते। एक प्रसंग है कि स्वामी जी के एक शिष्य ने मुग़ल बादशाह शाहजहाँ को "विदेशी" कह दिया, इस पर स्वामीजी बहुत क्रोधित हुए और उन्होंने शिष्य को डांटते हुए कहा, "यह वाक्य सुनकर शाहजहाँ की आत्मा क़ब्र में तड़प गई होगी।"[9]

अमेरिकी लेखक क्रिस्टोफ़र इशरवुड स्वामीजी का एक कथन उद्धृत करते हैं:

> "मुहम्मद (सल्ल.) समानता के वाहक थे। आप मुझसे पूछें कि इस्लाम में क्या अच्छा है? तो मेरा स्पष्ट उत्तर यह है कि यदि इस्लाम में अच्छाई न होती तो वह अब तक कैसे बचा रहता? केवल अच्छाई ही ज़िंदा रहती है, केवल अच्छाई ही बाक़ी रहती है। इस्लाम में बहुत सारी अच्छाईयां मौजूद हैं।"
>
> "पैग़ंबर मुहम्मद (सल्ल.) ने अपने जीवन से साबित कर दिया कि इस्लाम में समानता और भाईचारा मौजूद है। इस्लाम में जाति, वर्ण, नस्ल, रंग और लिंग के आधार पर कोई भेदभाव नहीं है। यह तो संभव हो सकता है कि तुर्की का सुल्तान अफ़्रीक़ी बाज़ार से एक ग़ुलाम ख़रीद ले और उसे ज़ंजीरों में बाँध कर तुर्की ले आये, लेकिन यदि वह ग़ुलाम मुसलमान बन जाये और उसमें धर्मपरायणता और ख़ुदा का भय हो तो यह भी संभव है कि वह ग़ुलाम सुल्तान की बेटी से शादी

कर ले। इसके विपरीत, विचार करें कि अमेरिका में नीग्रो और अमेरिकी भारतीयों के साथ कितना अमानवीय व्यवहार किया जाता है। लेकिन जैसे ही कोई व्यक्ति इस्लाम क़बूल कर लेता है तो उसके सारे पुराने भेद मिट जाते हैं। हर मुसलमान उन्हें खुले दिल से अपने भाई के रूप में स्वीकार करता है। यह समानता केवल इस्लाम धर्म में ही पाई जाती है, अन्य धर्मों में नहीं। यदि कोई व्यक्ति इस्लाम धर्म अपनाता है तो तुर्की का सुल्तान उसके साथ बैठकर खाना खाने को अपना अपमान नहीं समझता। यदि कोई नव-मुस्लिम प्रतिभाशाली और बुद्धिमान है, तो कोई भी पद उसके लिए बाधा नहीं बनता मगर मैंने अब तक अमेरिका में एक भी ऐसा चर्च नहीं देखा जहां नीग्रो और श्वेत व्यक्ति एक साथ पूजा करते हों। यह पूरी तरह से ग़लत बयान है कि मुस्लिम लोग महिलाओं को इंसान नहीं मानते हैं। मैं ख़ुद तो मुस्लिम नहीं हूं, लेकिन मैंने इस्लाम का अध्ययन किया है, और मैं विश्वास के साथ कह सकता हूं कि पूरे पवित्र क़ुरआन में एक भी शब्द ऐसा नहीं है जो यह दर्शाता हो कि इस्लाम महिलाओं के ख़िलाफ़ है।"

"वेदों का इस्लाम पर गहरा प्रभाव है। भारत का इस्लाम दुनिया के अन्य देशों में पाए जाने वाले इस्लाम से काफ़ी अलग है। जब दुनिया के विभिन्न

> हिस्सों से मुसलमान भारत आए, तो उन्होंने भारतीय मुसलमानों को ग़ैर-मुसलमानों के साथ व्यवहार करने के तरीक़े सिखाए। मानो व्यावहारिक आदिवेद हो। जो कि अभी तक हिंदुओं को सीखना बाकी है। इसलिए, हम पूरी तरह से आश्वस्त हैं कि वैदिक विचार, चाहे वे कितने भी महान और सुंदर क्यों न हों, व्यावहारिक इस्लाम के बिना वे मानव जाति के लिए बेकार और निरर्थक हैं। हमारी मातृभूमि हिंदू धर्म और इस्लाम का एक सुंदर संगम है। वेद इसका आंतरिक भाग है और इस्लाम इसका बाह्य भाग है। मैं अपनी आंतरिक आंखों से स्पष्ट रूप से देख सकता हूं कि भारत जल्द ही इस से छुटकारा पा लेगा और एक मज़बूत और स्वतंत्र भारत के रूप में इस धरती पर उभरेगा जिसकी आत्मा वेद होगी और शरीर इस्लाम होगा।"[10]

स्वामी जी के अनुसार ईसाइयों में पुजारियों के उन्मूलन में इस्लाम ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ईसाइयों के प्रोटेस्टेंट संप्रदाय पर इस्लाम का गहरा प्रभाव है। स्वामी विवेकानंद की दृष्टि में तलवार के धर्म का प्रचार करने वाले सभी लोग शापित हैं। उन्होंने इस्लाम और ईसाई धर्म के नाम पर हो रही हिंसा की कड़ी निंदा की लेकिन वह अच्छी तरह जानते थे कि किसी को ज़बरदस्ती मुसलमान या ईसाई नहीं बनाया जा सकता। समानता के कारण लोग इस्लाम में आये, जबकि ईसाई धर्म के प्रेम के संदेश ने लोगों को अपनी ओर आकर्षित किया।[11]

अपने शिकागो के समापन संबोधन में स्वामीजी ने अपनी धार्मिक अवधारणा का वर्णन इस प्रकार किया है:

> “धर्म के मामले में भी यही बात है। एक ईसाई को हिंदू या बौद्ध बनने की आवश्यकता नहीं है, न ही किसी हिंदू को बौद्ध या ईसाई बनने की आवश्यकता है। बल्कि होना तो यह चाहिए कि अपने धर्म पर दृढ़ता से टिके रहते हुए दूसरे धर्मों का सम्मान करना चाहिए और उनकी भावना को अपने अंदर समाहित करने का प्रयास करना चाहिए। इस विश्व धर्म संसद से हमें यही शिक्षा मिलती है। उन्होंने हमें दिखाया कि पवित्रता, स्वच्छता और उदारता पर किसी विशेष धर्म का एकाधिकार नहीं है, बल्कि हर धर्म और हर संप्रदाय ने उच्च चरित्र और नैतिकता के गुणों वाले लोगों को पैदा किया है। इन तथ्यों के बावजूद यदि कोई व्यक्ति इस ग़लतफ़हमी में है कि केवल उसका धर्म ही रहेगा और अन्य सभी धर्म नष्ट हो जायेंगे, तो यह एक भ्रम के अलावा और कुछ नहीं है। मुझे ऐसे अज्ञानी मनुष्य की बुद्धि पर दया आती है। मैं ऐसे व्यक्ति से कहना चाहता हूं कि बहुत जल्द हम अपनी आंखों से देखेंगे कि हर धर्म और ज्ञान में मोटे अक्षरों में यह लिखा होगा: “मदद करो, लड़ो मत, एकजुट रहो, फूट मत डालो”, “शांति स्थापित करो, विनाश और बर्बादी नहीं।”[12]

मेरे विचार में, सभी धर्म वास्तव में एक ईश्वर तक पहुंचने के अलग-अलग रास्ते हैं जो मानव जाति के कल्याण के लिए काम कर रहे हैं। उनमें से न तो कोई भी नष्ट नहीं हो सकता है और न ही समाप्त किया जा सकता है। जिस प्रकार आप प्रकृति की किसी भी प्रकार की शक्तियों को समाप्त नहीं कर सकते, उसी प्रकार आप इन आध्यात्मिक शक्तियों को भी समाप्त नहीं कर सकते। आपने स्वयं देखा है कि सभी धर्म जीवित एवं क्रियाशील हैं। समय-समय पर कभी-कभी किसी धर्म का पतन होता है लेकिन फिर कुछ ही क्षणों में वह ख़ुद को संभाल लेता है और प्रगति के पथ पर चल पड़ता है। कभी-कभी कुछ मठाधीश अपनी नापाक हरकतों से धर्म की गरिमा को ठेस ज़रूर पहुंचाते हैं, लेकिन उसकी आत्मा अपनी जगह पर रहती है और हमेशा बनी रहती है, उसे कभी नष्ट नहीं किया जा सकता। किसी भी धर्म का आदर्श वाक्य कभी नहीं बदलता। इसका मतलब यह है कि हर धर्म का विकास धीरे-धीरे होता है।[13] अपने संबोधन के दौरान स्वामी जी ने इस्लाम के बारे में कहा:

> "इस्लाम का ही उदाहरण लीजिए। ईसाई जितनी इस्लाम और मुसलमानों से नफ़रत करते हैं उतनी किसी और से नहीं। उनकी नज़र में इस्लाम दुनिया का सबसे ख़राब धर्म है। दूसरी ओर आपको इस पक्षपाती सोच से हटकर सोचना चाहिए कि जैसे ही कोई व्यक्ति कलमा पढ़कर मुसलमान बन जाता है, हर मुसलमान बिना किसी भेदभाव के उस नए मुसलमान को खुले दिल से अपना भाई स्वीकार करता है। ऐसी सहिष्णुता

दुनिया के किसी भी अन्य धर्म में दुर्लभ है। ज़रा विचार करें कि इस्लाम में सभी मुसलमान समान हैं और यह मुहम्मद (सल्ल.) की विशेषता है कि उन्होंने मानव समानता को इस्लाम धर्म की विशेषता बनाया। पवित्र क़ुरआन में कुछ स्थानों पर जीवन को बहुत ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इस पर ध्यान मत दो। ध्यान देने वाली असली बात यह है कि इस्लाम ने भाईचारे की एक आदर्श मिसाल पेश की है। यही इस्लाम का मूल आधार है। सांसारिक जीवन और स्वर्ग के बारे में सब कुछ अतिशयोक्ति मात्र है।"[14]

1898 में मुहम्मद सरफ़राज़ हुसैन को लिखे एक पत्र में स्वामीजी ने वेदांत की व्याख्या की और इस संबंध में इस्लाम की प्रशंसा की थी। वह लिखते हैं कि:

"चाहे हम इसे वेदांत का नाम दें या किसी और नाम से पुकारें, सच्ची बात तो यह है कि आदिवेद ही सभी धर्मों की अटल बात है। यह वह सर्वोच्च स्थान है जहां से हम हर धर्म और संप्रदाय को प्रेम और सम्मान की दृष्टि से देख सकते हैं। मैं समझता हूं कि यह भविष्योन्मुख मानवता का धर्म है। इस उच्च पद पर सबसे पहले पहुंचने का श्रेय हिंदुओं को जाता है क्योंकि वे यहूदियों और अरबों की तुलना में अधिक प्राचीन जाति हैं, लेकिन दुर्भाग्य से हिंदुओं में इस व्यावहारिक आदिवाद का सर्वत्र अभाव है। लेकिन

> मेरी दृष्टि में यदि कोई धर्म समानता का सर्वोच्च स्थान रखता है तो वह सिर्फ़ और सिर्फ़ इस्लाम ही है।[15] इसलिए, मुझे यह कहने में बिल्कुल भी संकोच नहीं है कि वेदांत के आदर्श, चाहे कितने भी परोपकारी और सुंदर क्यों न हों, व्यावहारिक इस्लाम के बिना मानव जाति के लिए बेकार हैं।"[16]

स्वामीजी भारत के आध्यात्मिक मूल्यों से भलीभांति परिचित थे इसीलिए वे स्वतंत्रता आंदोलन में हिंदू-मुस्लिम एकता के ध्वजवाहक थे। उन्होंने अंग्रेज़ों द्वारा हिंदुओं और मुसलमानों के बीच पैदा किए गए मतभेदों को ख़त्म करने की पूरी कोशिश की। उन्होंने इस्लाम की धार्मिकता पर प्रकाश डालकर मुसलमानों और हिंदुओं के बीच की खाई को पाटने का हरसंभव प्रयास किया।[17] अपने उपर्युक्त पत्र में स्वामीजी आगे कहते हैं:

> "हम एक ऐसे विश्व का सपना देख रहे हैं जहाँ न केवल वेद हों, न केवल पवित्र बाइबिल हो और न केवल पवित्र क़ुरआन हो, बल्कि इन सभी का एक सुंदर संगम हो जिसमें इन सभी धार्मिक ग्रंथों की शिक्षाएं एक ही जगह इकट्ठा कर दी गई हों। मानवता को यह आश्वस्त करने की आवश्यकता है कि एकता की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ ही धर्म हैं और हर कोई किसी भी धर्म को अपनाने के लिए स्वतंत्र है।"[18]

धर्म और राष्ट्रीयता में भेदभाव किए बिना समानता की बात करना ही स्वामी विवेकानंद के आदर्श समाज का सबसे महत्वपूर्ण स्तंभ है।

लेकिन इसका मतलब यह बिल्कुल नहीं है कि हर इंसान दूसरे इंसान के बराबर है। उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि यदि सभी प्रकार के भेदभाव को समाप्त कर दिया जाए तो अपरिहार्य परिणाम मृत्यु और विनाश होगा। हालाँकि, स्वामीजी इन मतभेदों को ख़त्म करने में असफल रहे।

> "इस विचार का वेदांत में कोई स्थान नहीं है कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से स्वाभाविक रूप से श्रेष्ठ है। स्वामीजी ने अपने अनुयायियों को संबोधित करते हुए कहा, दूसरे धर्मों के रीति-रिवाजों को अपने मानक पर मत तौलो। स्वामीजी स्वयं हिंदू धर्म के कई रीति-रिवाजों में अधिक आस्था नहीं रखते थे। उदाहरण के लिए, वे यह नहीं मानते थे कि गंगा में स्नान करने से किसी व्यक्ति के सारे पाप धुल जाते हैं। यदि यह सच होता तो मछली सबसे पवित्र प्राणी होती। वे स्वतंत्रता आंदोलन को मज़बूत करने के लिए अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ अभियान चलाना चाहते थे। मुसलमानों और अंग्रेज़ों की तुलना करते हुए स्वामीजी कहते हैं, आप ज़रा भारत पर विचार करें। हिंदुओं ने क्या-क्या छोड़ा है? हर जगह ख़ूबसूरत मंदिर ही मंदिर। मुसलमानों की क्या विरासत है? ख़ूबसूरत स्थल। अंग्रेज़ों ने क्या छोड़ा? शराब की टूटी बोतलों के ढेर के अलावा कुछ नहीं।"[19]

स्वामीजी ने यूरोपीय पुनर्जागरण में इस्लाम और अरबों की भूमिका की गहरी सराहना की। रोमन साम्राज्य के पतन के साथ ही पूरे यूरोप

में ज्ञान का प्रकाश बुझ गया और वह अज्ञानता की गहराइयों में डूब गया, लेकिन तभी यूरोप में इस्लाम का सूर्य उदय हुआ और ज्ञान का प्रकाश यूरोप में फैल गया। "इस्लाम यूरोप में पूर्व से पश्चिम तक फैल गया और फिर हर तरह की बुराई और कमी दूर हो गई और ज्ञान की एक नयी रोशनी जगमगा उठी।"[20]

विडंबना यह है कि इस्लाम के बारे में इन सभी सकारात्मक विचारों के बावजूद कुछ लोग स्वामीजी को हिंदुओं के धार्मिक नेता तक ही सीमित रखते हैं और उन्हें मुस्लिम विरोधी संत के रूप में चित्रित करते हैं। उनकी बदनामी की जाती है और उन पर ग़लत बयानबाज़ी थोपी जाती है। उदाहरण के लिए, "मुसलमान इस मामले में सबसे ख़राब जाति है और साथ ही सबसे अधिक संप्रदायों में विभाजित भी।" उनके पास उन सभी का मूल्यांकन करने का केवल एक ही मानक है: अल्लाह के अलावा कोई इबादत के लायक़ नहीं है और पैग़ंबर मुहम्मद (सल्ल.) उसके रसूल (दूत) हैं और जो कोई मर्द-औरत इस पर विश्वास न करे वह मृत्युदण्ड का भागी है; जो कुछ भी इस इस्लामी इबादत के दायरे से बाहर है उसे तुरंत मिटा दिया जाना चाहिए, और जो भी किताब इसके अलावा सिखाती है उसे तुरंत जला दिया जाना चाहिए। प्रशांत महासागर से लेकर अटलांटिक महासागर तक, पाँच सौ वर्षों तक लगातार ख़ून की नदियाँ बहती रहीं। यही इस्लाम है।[21]

> इस धरती पर कोई भी धर्म ऐसा नहीं है जो इस्लाम से अधिक दोग़ला हो और दुनिया में किसी भी देश ने इतनी हत्याएं नहीं की हैं जितनी मुसलमानों ने

> की हैं। क़ुरआन में कई बार काफ़िरों को मार डालने का आदेश दिया गया है।[22]

ये और इसी तरह के कई उद्धरण लंदन (1890) और कैलिफ़ोर्निया (1896) के संबोधनों से निकाल कर बिना किसी संदर्भ और प्रमाण के प्रस्तुत किये गए हैं।[23] लेकिन ये सभी उद्धरण इस्लाम और मुसलमानों के बारे में उनकी आम राय के विपरीत हैं, इसलिए इनकी पुष्टि की जानी चाहिए। यह बहुत आश्चर्य की बात है कि स्वामी विवेकानंद जैसे महान और बहुमुखी साधु, जिन्होंने रामकृष्ण परमहंस के सामने घुटने टेक दिए थे, इस्लाम के प्रति इस तरह के शब्दों का प्रयोग किए होंगे। यह अत्यंत दुखद है कि ऐसे महान व्यक्तित्व की गरिमा को कुछ सांप्रदायिक तत्वों द्वारा आघात पहुंचाया जा रहा है। हालांकि स्वामी विवेकानंद की परोपकारिता से गांधीजी भी अछूते नहीं रहे।

References:

[1] For details, Green Message, Swami Vivekananda, https://greenmesg.org/swami_vivekananda_sayings_quotes/religion-religious_harmony.php

[2] *Vivekananda Sahitya Samgraham*, Sreeramakrishna Matam, Thrissur, 1992, p.417

[3] https://www.artic.edu/swami-vivekananda-and-his-1893-speech

[4] *Vivekananda Sahitya Sarvaswam*, Vol.III, pp.26-27

[5] Rafiq Zakaria, A Humanism that embraces all, Leader Article, *Times of India*, May, 14, 2002

[6] Rafiq Zakaria, op.cit.

[7]Speech at Kumbha konam, *Vivekananda Sahitya Samgraham*, p.259

[8] Mahendra, *Speeches of Sree Rama Krishna*, Rama Krishna Mission, Calcutta

[9] For Details see, Govind Krishnan V, *Vivekananda, The Philosopher of Freedom*, Aleph Books, 2023.

[10] Christopher Isherwood, Teachings of Swami Vivekananda, Introduction, quoted by DilipRaote, *Hidustan Times*, 25-7- 2007

[11] Gopal Sreenivas Banhatti, *Life and Philosophy of Swami Vivekananda*, Delhi, 1989, p.177

[12] https://www.artic.edu/swami-vivekananda-and-his-1893-speech

[13] "The way to the realisation of a universal religion" (Delivered in the Universalist Church, Pasadena, California, 28th January 1900), *The Complete works of Swami Vivekananda*, Vol.2, Practical Vedanta and Other Lectures

[14]Ibid,http://en.wikisource.org/wiki/The_Complete_Works_of_SwamiVivekananda/Volume_2/Practical_Vedanta_and_other_lectures/The_Way_to_the_Realisation_of_a_Universal_Religion,pp.371-72

[15] *Complete works of Swami Vivekananda, Vol.VI* , p. 415, P.R.Bhuyan (ed.), *SwamiVivekananda; Messiah of Resurgent India*, 174groups.yahoo.com/group/IndiaSeminar/message/1951; Swami Vivekananda "Brain and Body,Letters dated Almora, June,10 1898

[16] *Vivekananda Sahitya Samgraham*, Letters, p. 658

[17] Ibid.

[18] Ibid., p.416

[19] Ibid.,p.184

[20] *Vivekananda Sahitya Samgraham*, p. 614

[21] Ibid, p.26

[22] *Complete works of Swami Vivekananda,* Practical Vedanta,Part,4, Vol.II, Ibid.,pp.352-53

[23] At Shakespear Club of Padasena in California on 3 February 1900. And in London 18; November 1896 as given in the complete works.

तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी के भारत में सूफ़ीवाद

(अमीर ख़ुसरो के विशेष संदर्भ में)

इस्लामी जगत में सूफ़ीवाद लंबे समय से अस्तित्व में है। लेकिन सूफ़ीवाद तब संगठित हुआ जब आध्यात्मिक सिलसिले या **"तरीक़े"** अस्तित्व में आये। परिणामस्वरूप पूरी दुनिया में सूफ़ियों का एक नेटवर्क फैल गया। इन सूफ़ी सिलसिलों में सूफ़ी के उत्तराधिकारी को **"ख़लीफ़ा"** कहा जाता है जो अपने शेख़ (गुरु) की शिक्षाओं को लोगों तक पहुँचाता है। यही वह समय था जब महान सूफ़ियों ने भारत की भूमि पर क़दम रखा था। उनकी कृपा और आशीर्वाद आज भी जारी है।

1206ई. में सुल्तान मुहम्मद ग़ौरी के शासनकाल के दौरान ख़्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती (रह.) अफ़ग़ानिस्तान से भारत आए और राजस्थान के सुदूर इलाक़े अजमेर में बस गए।[1] आप लगभग तीन दशकों तक

इस्लाम का संदेश लोगों तक पहुंचाते रहे। लोग आपसे दुआएँ करवाते और आध्यात्मिक आशीर्वाद प्राप्त करते थे। आपके उच्च चरित्र और अच्छे आचरण से प्रेरित होकर बड़ी संख्या में लोगों ने इस्लाम अपना लिया। 1236ई. में ख़्वाजा साहब का निधन हो गया। उनके निधन के बाद उनके अनुयायियों ने एक भव्य मज़ार का निर्माण कराया जो आज एक विशाल आध्यात्मिक केंद्र है। हज़रत ख़्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती (रह.) की दरगाह को भारत की पहली दरगाह होने का गौरव प्राप्त है।

ख़्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती (रह.) ने अपने शिष्यों को देश के विभिन्न हिस्सों में उपदेश देने के लिए भेजा। ख़्वाजा साहब के शिष्य शेख़ हमीदुद्दीन नागौरी (रह.) नागौर (राज.) में बस गये। आप वहां मज़दूरों के साथ मिलकर खेती करने के साथ-साथ उनका सुधार और आध्यात्मिक मार्गदर्शन भी करते रहे। जब मुहम्मद बिन तुग़लक़ ने अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया तो उसने शेख़ का मक़बरा और एक ख़ानक़ाह (मठ) भी बनवाई।

तेरहवीं सदी की शुरुआत में मध्य एशिया और ईरान मंगोलों के आक्रमण से जूझ रहे थे। उस समय सूफ़ी वहाँ से पलायन कर भारत आये। यहां उनका उदारतापूर्वक स्वागत किया गया और उन्हें उपदेश के लिए उपयुक्त माहौल दिया गया। सुल्तान इल्तुतमिश ने दिल्ली में क़ुव्वतुल-इस्लाम मस्जिद बनवाई और इसके परिसर में इस्लाम फैलाने के लिए ख़्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती के ख़लीफ़ा (उत्तराधिकारी) ख़्वाजा बख़्तियार काकी (रह.) को आमंत्रित किया। हज़रत काकी से प्रभावित होकर हज़ारों लोगों ने इस्लाम क़बूल कर लिया। हज़रत

काकी के नौ शिष्यों में से, हज़रत बाबा फ़रीद (रह.) अजोधन में बस गए, जबकि शेष आठ दिल्ली और उसके आसपास बस गए।

शेख़ फ़रीद के शिष्यों की संख्या काफ़ी बड़ी है। उनमें से अधिकांश ने चिश्त सिलसिले की अपनी ख़ानक़ाहें (मठ) स्थापित कीं। हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया (रह.) उनमें सबसे प्रमुख हैं। बल्कि ये कहना ग़लत नहीं होगा कि हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया (रह.) चौदहवीं सदी के सबसे महान सूफ़ी हैं। उन्होंने चिश्त सिलसिले को एक नई रौशनी प्रदान की। आपके शिष्यों ने उत्तर एवं मध्य भारत को अपनी गतिविधियों का केन्द्र बनाया। हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया (रह.) बदायूँ (यूपी) के थे। आप ग़रीबी और दरिद्रता में जी रहे थे और कभी-कभी तो आपको दो वक़्त का खाना भी नहीं मिलता था। दिल्ली में वे अक्सर अमीर ख़ुसरो के नाना इमादुल-मुल्क के यहाँ रुकते थे। हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया (रह.) स्थायी निवास की तलाश में इधर-उधर भटकते रहते थे। यद्यपि उनके रिश्तेदार उनसे सुलतान बलबन से मिलकर अपनी ख़्वाहिश बयान करने का अनुरोध करते रहते थे, परन्तु उनके आत्मसम्मान ने उन्हें कभी किसी के आगे हाथ फैलाने की इजाज़त नहीं दी।

जब 1290ई. में सुल्तान जलालुद्दीन सिंहासन पर बैठे तो उन्होंने हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया (रह.) को उपहार के रूप में एक बड़ी राशि भेजी और यह भी संदेश भेजा कि अति शीघ्र उन्हें जागीर भी प्रदान की जाएगी जिसमें कई गाँव होंगे। हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया (रह.) को इस नश्वर संसार से कोई लगाव नहीं था इसलिए उन्होंने जागीर लेने से मना कर दिया।[2] सुल्तान अलाउद्दीन ख़िलजी के समय तक हज़रत निज़ामुद्दीन

औलिया (रह.) की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल चुकी थी। सुल्तान अलाउद्दीन ख़िलजी ने हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया (रह.) के ज़ायरीनों (तीर्थयात्रियों) के लिए एक सराय भी बनवाई और अन्य सुविधाएँ भी प्रदान कीं। सुल्तान अलाउद्दीन ख़िलजी के उत्तराधिकारियों के संबंध हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया (रह.) से अच्छे नहीं थे लेकिन इसके बावजूद वे हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया (रह.) को दिल्ली से बाहर निकालने में सफल नहीं हो सके। 1325ई. में हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया (रह.) का देहांत हो गया। सुल्तान मुहम्मद बिन तुग़लक ने हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया (रह.) के सम्मान में एक शानदार दरगाह बनवाई, जहाँ मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम दोनों ही ज़ियारत (दर्शन) करने आते हैं।

अमीर ख़ुसरो हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के सबसे योग्य शिष्य थे। आपके पूर्वज सुल्तान इल्तुतमिश के शासनकाल के दौरान मध्य एशिया के बल्ख़ (अफ़ग़ानिस्तान) से भारत आए थे। हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया (रह.) ने बहुत कम उम्र में ही अरबी, फ़ारसी, हिंदवी और अन्य प्राच्य विद्याओं में महारत हासिल कर ली थी। उन्होंने कम उम्र में ही कविता लिखना शुरू कर दिया था। वह एक ही समय में कवि, इतिहासकार और सूफ़ी थे। उन्होंने सुल्तान अलाउद्दीन ख़िलजी की प्रशंसा में पाँच मसनवियाँ पढ़ीं। सितार जैसे लोकप्रिय संगीत वाद्ययंत्र के आविष्कार का श्रेय भी उन्हीं को दिया जाता है। इसके अलावा, उन्होंने कई रागों का भी आविष्कार किया जो महफ़िल-ए-समा (क़व्वाली की महफ़िल) में अक्सर उपयोग किए जाते हैं। जब हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया (रह.) का निधन हुआ तो अमीर ख़ुसरो सुल्तान मुहम्मद बिन तुग़लक़ के साथ

बंगाल की यात्रा पर थे। जैसे ही अमीर ख़ुसरो ने हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के मृत्यु का समाचार सुनी तो वे तुरंत दिल्ली लौट आये और हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया की क़ब्र पर खड़े होकर नम आँखों से ये पंक्तियाँ पढ़ीं:[3]

गोरी सोवै सेज पर, मुख पर डारे केस।

चल ख़ुसरो घर आपने, रैन भई चहुँ देस॥

हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया (रह.) की मृत्यु से अमीर ख़ुसरो बहुत दुखी हुए और उसके बाद वे केवल छह महीने ही जीवित रहे। सितंबर 1325ई. में उनका भी निधन हो गया।

अमीर ख़ुसरो के जीवन में संगीत ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। संगीत में ऐसी एक भी चीज़ नहीं है जिसका संबंध कहीं न कहीं अमीर ख़ुसरो से न मिलता हो। यहाँ तक कि सूफ़ियों के नृत्य का संबंध भी अमीर ख़ुसरो से ही है। हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया (रह.) के समय में महफ़िल-ए-समा में नाचने की इजाज़त नहीं थी लेकिन एक बार की घटना है कि अमीर ख़ुसरो भरी सभा में नाचने लगे। इस पर हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया (रह.) ने अमीर ख़ुसरो से कहा, **"नृत्य करते समय अपने हाथ आसमान की ओर उठाओ जैसे कि तुम अल्लाह से प्रार्थना कर रहे हो और तुम्हारे पैर ज़मीन पर मज़बूती से टिके रहने चाहिए जैसे कि यह दुनिया तुम्हारी नज़र में तुच्छ है।"** यही वजह है कि जब सूफ़ी नृत्य करते हैं तो उनके हाथ आसमान की ओर होते हैं और उनके पैर ज़मीन को दबाते रहते हैं।

अमीर ख़ुसरो को भारत का मौसम और जलवायु बहुत पसंद थी। उनके अनुसार भारत दुनिया का सबसे ख़ूबसूरत देश है। वे इसके लिए प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि जब हज़रत आदम (अ.स.) स्वर्ग से निकाले गये तो उन्हें भारत की भूमि पर ही उतारा गया।[4] यदि उन्हें ख़ुरासान या अरब के रेगिस्तान या चीन में भेजा जाता, तो वे वहां की कठोर जलवायु में कुछ घंटों से अधिक जीवित नहीं रह पाते।

हज़रत निज़ामुद्दीन के अनेक शिष्य थे। इनमें शायरी में हसन, इतिहासकार ज़ियाउद्दीन बरनी और सूफ़ीवाद में शेख़ नसीरुद्दीन चिराग़ का नाम उल्लेखनीय है। दिल्ली में हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया (रह.) के ख़लीफ़ा शेख़ नसीरुद्दीन चिराग़ थे। जब मुहम्मद बिन तुग़लक़ ने सल्तनत को दिल्ली से दौलताबाद स्थानांतरित करने का फ़ैसला किया, तो उसने हज़रत शेख़ नसीरुद्दीन चिराग़ से भी दौलताबाद जाने का अनुरोध किया लेकिन उन्होंने इनकार कर दिया और दिल्ली में रहने का फ़ैसला किया। मुहम्मद बिन तुग़लक़ की मृत्यु के बाद शेख़ नसीरुद्दीन चिराग़ ने फ़िरोज़ शाह तुग़लक के राज्याभिषेक में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आप **"चिराग़-ए-देहली"** (चिराग़ दिल्ली) के नाम से प्रसिद्ध हुए। उनकी मृत्यु 1356ई. में हुई और उन्हें दिल्ली में ही दफ़नाया गया। उनकी ख़ानक़ाह पर सभी धर्म के अनुयायी आते हैं।

चिश्ती सिलसिले के सूफ़ी ग़रीबी में रहते थे। उनके अनुसार, दुनिया की दौलत और संपत्ति ईश्वर के ज्ञान में बाधा डालती है। वह उपवास के माध्यम से अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण रखते थे।[5] वे बहुत कम खाना खाते थे ताकि शौच की ज़रूरत न पड़े। एक बार किसी ने शेख़

निज़ामुद्दीन औलिया (रह.) से पूछा, **"आप इतना कम खाना क्यों खाते हैं?"** उन्होंने अपनी कृपादृष्टि को साबित करते हुए एक सुंदर जवाब दिया, **"रात में मस्जिदों और दुकानों के सामने इतने लोग भूखे सो रहे हैं ऐसे में खाना मेरे कण्ठ (हलक़) से नीचे कैसे उतर सकता है।"**[6] चिश्ती सिलसिले के सूफ़ी ज़मीन पर इबादत व मेहनत करते और छोटे-बड़े सब एक साथ ज़मीन ही पर सोते थे। खाना होता तो सब खाते और खाना नहीं होता तो सब भूखे सो जाते।

सुहरवर्दी सिलसिले के सूफ़ी भी चिश्ती सिलसिले की भाँति भारत आये। शेख़ बहाउद्दीन ने भारत में सुहरवर्दी सिलसिले की स्थापना की। शेख़ बहाउद्दीन और सुल्तान इल्तुतमिश बहुत क़रीबी थे। सुल्तान इल्तुतमिश ने उन्हें शेख़ुल-इस्लाम नियुक्त किया था। उनके ख़लीफ़ा सैयद नूरुद्दीन ग़ज़नवी, सैयद जलालुद्दीन और क़ाज़ी हमीदुद्दीन सुहरवर्दी सिलसिले का प्रचार और प्रसार करते रहे।

धीरे-धीरे सूफ़ीवाद ने भारत में एक आंदोलन का रूप ले लिया। जिसका अपरिहार्य परिणाम भारतीय समाज भाईचारे और प्रेम का आदर्श समाज बना। सूफ़ियों के अनुसार मानव सेवा ही ख़ुदा के पास पहुँचने का सबसे सही रास्ता है। पीरी-मुरीदी, ख़ानक़ाहों के प्रबंधन, इबादत और संस्कृति से सभ्य और विनम्र मनुष्य अस्तित्व में आए। ख़ानक़ाहों में आम लोगों को आध्यात्मिक शांति मिलती थी। सूफ़ी भी आम लोगों के साथ रहते थे और उनके दुःख-दर्द समान रूप से साझा करते थे। सूफ़ियों ने तपस्या और कड़ी मेहनत के माध्यम से कुछ अलौकिक सिद्धियाँ हासिल की थीं, जिसका उद्देश्य, हज़रत मोइनुद्दीन चिश्ती के अनुसार, **"संकटग्रस्त लोगों को दिलासा**

देना, ज़रूरतमंदों की ज़रूरतों को पूरा करना और भूखों को खाना खिलाना ही सबसे बेहतरीन सेवा है।”[7]

चिश्ती और सुहरवर्दी सिलसिले के सूफ़ियों ने समय के साथ बिल्कुल अलग रवैया अपनाया। जहां एक ओर चिश्ती सिलसिले के सूफ़ियों ने सुल्तानों और अमीरों से दूरी बना ली थी वहीं सुहरवर्दी सिलसिले के सूफ़ियों ने बादशाहों से बहुत सारे उपहार स्वीकार किए। हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया (रह.) ने अपने जीवनकाल में सात सुल्तानों को देखा लेकिन वे उनमें से किसी से भी मिलने नहीं गये। सिवाय सुल्तान जलालुद्दीन के, जिन्होंने उन्हें महफ़िल-ए-समा में संगीत के प्रयोग पर फ़तवा लेने के लिए बुलाया था। चिश्ती सिलसिले के सूफ़ियों ने भी सरकारी सम्मान को भी ठुकरा दिया, हालाँकि बड़े-बड़े शहज़ादे उनके शिष्य हुआ करते थे।

चौदहवीं शताब्दी के अंत में हम पाते हैं कि भारत में सूफ़ीवाद बिखरता हुआ नज़र आता है। इसमें से रूहानियत (आध्यात्मवाद) ग़ायब होती जा रही है और तबलीग़ (धर्म की बात को दूसरों तक पहुंचाना) के तत्व समाहित होते जा रहे हैं। इसका एक पहलू उच्च धार्मिक और आध्यात्मिक मूल्यों को बढ़ावा देना है, जो हज़रत शेख़ ज़ियाउद्दीन नख़शाबी और शेख़ शर्फ़ुद्दीन याह्या मुनीरी के पत्रों से स्पष्ट है। दूसरा पहलू हिंदू रीति-रिवाजों को अपनाना है। शेख़ फ़रीदुद्दीन (रह.) और हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया (रह.) के मेल-जोल हिंदू योगियों से थे जो अक्सर उनकी सेवा में उपस्थित होते थे और धार्मिक और आध्यात्मिक मामलों पर चर्चा करते थे। शेख़ नसीरुद्दीन चिराग़ ने योग सीखा और अपने मुरीदों को कुछ आसन करने के लिए प्रेरित

करते थे।[8] चिश्ती सिलसिले के प्रसिद्ध सूफ़ी शेख़ गेसू दराज़ ने भी हिंदू धर्म का अध्ययन किया था और अक्सर हिंदू धर्म गुरूओं के साथ हिंदू मत पर चर्चा किया करते थे।[9]

जब हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया ने हिंदुओं को गंगा में स्नान करते और भजन गाते देखा, तो उन्होंने यह शेर कहा:

हर क़ौम रास्त-राहे, दीन-ए-व-क़िब्ला गाहे

(हर क़ौम का अपना रास्ता है और उनका अपना धर्म और अपना काबा है।[10])

अमीर ख़ुसरो ने हिंदू धर्मग्रंथों का गहन अध्ययन किया था। उनका स्वयं का कथन है:

"अरे! तुम हिन्दू की पूजा पर कटाक्ष करते हो, उससे यह भी सीखो कि इबादत (पूजा) कैसे की जाती है।[11]

हिन्दी भजनों ने सूफ़ियों को बहुत प्रभावित किया। 14वीं शताब्दी के अंत में हिंदुओं और मुसलमानों के बीच सद्भाव काफ़ी ज़्यादा था। इसमें अमीर ख़ुसरो ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ख़्वाजा बन्दा नवाज़ गेसू दराज़ के समय में भारतीय संगीत का बहुत अध्ययन किया गया और इसका प्रयोग महफ़िल-ए-समा में किया जाने लगा जिसमें हिंदू और मुसलमान दोनों समान रूप से भाग लेते थे।[12]

References:

[1] SAA.Rizvi, *A History of Sufism in India*, Delhi, 1978, p. 122

[2] *Siyarul Auliya,* pp. 114-15

[3] He was the most loved disciple of his master. He was so close to his master that once Nizāmuddīn Auliyā' said, "If sharī'ah allows me I would like him to be buried with me in the same grave"

[4] For details, See Aziz Ahmad, *Studies in Islamic Culture in the Indian Environment*,1969, p.115-118

[5] SAA Rizvi, op.cit., p.172

[6] M.Mujib, Indian Muslims,1971, p.146

[7] K. A. Nizami, op. cit., p.199

[8] Ibid., p. 201

[9] M. Mujib, Indian Muslims, Delhi, 1971,p.146.

[10] Ibid., p.165

[11] Ibid., Nuh Sipihr, p.163

[12] Indian Muslims ,166

भारतीय सूफ़ीवादः
सुधार और एकता की एक उत्कृष्ट कृति

सूफ़ीवाद की मुख्य विशेषताएँ आंतरिक पवित्रता, उच्च नैतिक मूल्य और आध्यात्मिक जीवन शैली हैं। भारत प्राचीन काल से ही आध्यात्म का केंद्र भी रहा है। वेदों और उपनिषदों में सूफ़ीवाद के गहरे निशान मिलते हैं। इन्हीं कारणों से भारत में इस्लामी सूफ़ीवाद को विकास के लिए अनुकूल वातावरण मिला। भारतीय समाज जाति के कुरूप बंधनों से जकड़ा हुआ था। उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्ग के लोगों पर अत्याचार करते थे तथा उनके साथ अमानवीय व्यवहार करते थे लेकिन इस्लाम में जाति के आधार पर भेदभाव की कोई अवधारणा नहीं है। सूफ़ियों ने भी इसी दर्शन का अनुसरण किया। ख़ानक़ाहों में भी किसी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं होता था। सभी लोग एक दूसरे के साथ मिलकर रहते थे। सबका खान-पान और रहन-सहन एक जैसा है। ख़ानक़ाहों की इन विशेषताओं ने ग़ैर-मुसलमानों और विशेष रूप से निम्न वर्गों को अपनी ओर आकर्षित किया।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि भारत में सूफ़ियों का आगमन मुसलमानों की सत्ता आने से बहुत पहले हुआ था। सूफ़ियों ने भारत में "सुल्ह-ए-कुल" की नीति को बढ़ावा दिया, जिसके कारण बड़ी संख्या में स्थानीय लोग इस्लाम में शामिल हो गए। बसरा (इराक़) के सुप्रसिद्ध सूफ़ी हसन अल-बसरी के शिष्य मलिक बिन दीनार अपने कई सरदारों और रिश्तेदारों के साथ मालाबार आए और यहां इस्लाम के प्रचार-प्रसार में लग गए। उनके बाद मानो सूफ़ियों का एक नेटवर्क तैयार हो गया और अरब और मध्य एशिया से बड़ी संख्या में सूफ़ी भारत आए, जिन्होंने पूरे भारत में ख़ानक़ाहों की स्थापना की, जो वास्तव में समाज सुधार के केंद्र थे।

सूफ़िया-ए-किराम समाज के निचले वर्गों के साथ मिलकर रहते थे। इस नीति के पीछे दो कारक थे: पहला, वे जाति-विभाजित भारतीय समाज को इस बंधन से मुक्त करना चाहते थे। दूसरे, इस तरह वह लोगों के क़रीब आते थे और उनका दिल जीत लेते थे। ऐतिहासिक साक्ष्यों से पता चलता है कि उत्तर भारत में ग़ौरी राजवंश की विजय से लगभग आधी शताब्दी पहले सूफ़ीवाद ने भारत में काफ़ी लोकप्रियता हासिल कर ली थी। बहराईच में सैयद सालार मसूद की दरगाह के आसपास अच्छी ख़ासी मुस्लिम आबादी बस गई थी। इसके अलावा बदायूँ में मीरान मुल्हिन की दरगाह, गोपामऊ में ख़्वाजा मजदुद्दीन बिलग्रामी और लाला पीर की दरगाह और मनेर में इमाम तक़ी की दरगाह सूफ़ीवाद के महत्वपूर्ण केंद्र के रूप में उभरी।

नि:संदेह, भारत में मुसलमानों की राजनीतिक शक्ति ने सूफ़ीवाद के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और सूफ़ियों ने देश के विभिन्न

स्थानों में अपनी ख़ानक़ाहें बनाईं। मगर कई बार इसके कारण सूफ़ियों को काफ़ी परेशानियों का सामना करना पड़ा।[1] लेकिन एक बार जब सूफ़ियों ने अपना केंद्र स्थापित कर लिया तो फिर उनके अच्छे संस्कार, परोपकार, सरल जीवन शैली और समानता ने स्थानीय लोगों का दिल जीत लिया जबकि इसका राजनीति और राजनीतिक शक्ति से कोई लेना-देना नहीं था। प्रो. ख़लीक़ अहमद निज़ामी के अनुसार, "जिस समय देश ग़ौरियों के हमलों से थर-थर कांप रहा था, ऐसे कठिन समय में ख़ानक़ाहों ने लोगों को आश्रय दिया। सूफ़ी शांतिपूर्वक अपनी जगह पर बैठे रहे और प्रेम और भाईचारा, मानवता और समानता की शिक्षा दी।[2] एक ऐसे समय में जब शासक और कुलीन वर्ग अभिमान, घमंड और जातीय गौरव के कारण आम लोगों से मिलना पसंद नहीं करते थे, उस समय इन सूफ़ियों ने ग़रीब और अमीर, कुलीन और नीच, देहाती और शहरी के बीच के सभी भेदों को मिटाकर इन अपमानित लोगों को गले लगा लिया और उनके लिए अपनी ख़ानक़ाहों के दरवाज़े खोल दिए।"

सूफ़ीवाद के लगभग सभी सिलसिलों के केंद्र और ख़ानक़ाहें भारत में पाई जाती हैं। लेकिन उनमें से सबसे प्रतिष्ठित और प्रमुख सिलसिला चिश्तिया है। इतिहासकारों और शोधकर्ताओं ने ख़्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती के उपकार और आशीर्वाद को विस्तार से दर्ज किया है, लेकिन आपके बचपन के हालात के बारे में ज़्यादा कुछ पता नहीं चल सका है। यह निर्विवाद सत्य है कि ख़्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती की आध्यात्मिक उपलब्धियाँ बेमिसाल हैं। ख़्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती, चिश्ती वंश के प्रसिद्ध सूफ़ी ख़्वाजा उस्मान नेशापुरी के ख़लीफ़ा

(उत्तराधिकारी) थे। ख़्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती के अधिकांश जीवनीकारों का मानना है कि ख़्वाजा साहब पृथ्वीराज चौहान के शासनकाल के दौरान अजमेर में बस गए थे, जबकि मौलाना जमाली का दावा है कि ख़्वाजा साहब अजमेर तब आए थे जब मुहम्मद ग़ौरी ने उस पर क़ब्ज़ा कर लिया था और क़ुतुबुद्दीन ऐबक को वहां का गवर्नर नियुक्त किया था।[3] हज़रत ख़्वाजा के हाथों हज़ारों लोगों ने इस्लाम क़बूल किया। मार्च 1236 ई. में आपका निधन हो गया। आपके निधन के बाद आपके शिष्यों और मुरीदों ने एक भव्य मज़ार का निर्माण कराया जो कि आज सभी की आस्था का केन्द्र है।

उत्तर भारत में चिश्ती वंश को बढ़ावा देने में शेख़ हमीदुद्दीन नागौरी (1276 ई.) और शेख़ क़ुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी (1235 ई.) ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हज़रत ख़्वाजा बख़्तियार काकी के ख़लीफ़ा शेख़ फ़रीदुद्दीन गंज शकर (1265 ई.) ने मध्य भारत में चिश्ती सिलसिले को आगे बढ़ाया। शेख़ फ़रीद के शिष्यों की संख्या काफ़ी ज़्यादा है। उनमें से अधिकांश ने अपनी ख़ुद की चिश्ती सिलसिले की ख़ानक़ाहें स्थापित कीं। हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया उनमें सबसे प्रमुख हैं। बल्कि ये कहना ग़लत नहीं होगा कि हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया चौदहवीं सदी के सबसे महान सूफ़ी हैं। उन्होंने चिश्ती सिलसिले को एक नई रौशनी अता की। लगभग आधी सदी तक उन्होंने दिल्ली में तब्लीग़ का काम किया।[4] शेख़ नसीरुद्दीन (1356 ई.), ख़्वाजा हुसैन अब्दुल क़ुद्दूस (1537 ई.), शेख़ जलालुद्दीन थानेसरी, शेख़ अब्दुल अज़ीज़, शेख़ सलीम और शेख़

बंदा नवाज़ गेसू दराज़ चिश्ती सिलसिले के अन्य उल्लेखनीय सूफ़ी हैं।

चिश्ती सिलसिले के सूफ़ी ग़रीबी और विकट परिस्थितियों में ज़िंदगी गुज़ारते थे। उनके पास न तो रहने के लिए घर था और न ही खाने के लिए उचित भोजन। अक्सर वे मुरीदों (भक्तों) द्वारा दिया गया खाना ही खाते थे। वे सुल्तानों और राजकुमारों से नफ़रत करते थे, भले ही शासकों को उनकी संगति में आध्यात्मिक शांति मिलती थी। शेख़ फ़रीद ने सैयद मौला को हिदायत दी थी:

> **"सुल्तानों और राजकुमारों को अपना दोस्त मत समझो। उनका ख़ानक़ाह में आना आध्यात्म के अंत जैसा है। जिस भी दरवेश ने सुल्तानों और सरदारों से दोस्ती की, उसका अंत बुरा हुआ।"[5]**

शेख़ बहाउद्दीन ज़करिया मुल्तानी (1182-83) ने भारत में सुहरवर्दी सिलसिले की स्थापना की। सुहरवर्दी सिलसिले का दर्शन चिश्ती सिलसिले से बिल्कुल अलग था। उनका मानना था कि मनुष्य को सामान्य एवं संतुलित जीवन जीना चाहिए। एक ऐसी जीवनशैली जो आत्मा और शरीर दोनों को पोषण प्रदान करती है। न तो उन्होंने ख़ुद लगातार उपवास किया और न ही अपने अनुयायियों और रिश्तेदारों को ग़रीबी और भुखमरी का जीवन जीने की हिदायत की।

चिश्ती सिलसिले के विपरीत सुहरवर्दी सिलसिले के सूफ़ी धन को बुरी चीज़ नहीं मानते थे। शेख़ बहाउद्दीन का मशहूर कथन है कि:

“धन दिल की बीमारी है, लेकिन जब यह हाथ में है, तो यह सभी बीमारियों का इलाज भी है।”

इसके अलावा सुहरवर्दी सिलसिले के सूफ़ी राजनीति में सक्रिय रहते थे। शेख़ बहाउद्दीन एक उत्कृष्ट प्रशासक होने के साथ-साथ मानव स्वभाव के भी अच्छे जानकार थे। उन्होंने सुहरवर्दी सिलसिले को एक मज़बूत आधार प्रदान किया। शेख़ सदरुद्दीन और उनके बेटे अर्जुमंद शेख़ सैयद जलालुद्दीन सुर्ख़ और सैयद जलालुद्दीन मख़दूम-ए-जहाँनीन सुहरवर्दी सिलसिले के प्रसिद्ध सूफ़ी हैं।

15वीं शताब्दी में शेख़ हुसैन जिलानी ने औच (पाकिस्तान) में क़ादरिया सिलसिले की स्थापना की। उनके बेटे अब्दुल क़ादिर सानी, शेख़ दाऊद, शेख़ नौशाह, मियां मीर आदि ने देश के विभिन्न हिस्सों में क़ादरिया सिलसिले को बढ़ावा दिया। बादशाह शाहजहाँ का सबसे बड़ा पुत्र दारा शिकोह भी मियाँ मीर का अनुयायी था। दारा शिकोह ने सूफ़ीवाद के विषय पर बहुत काम किया है। दारा शिकोह ने अपनी उत्कृष्ट कृति “मजमउल-बहरैन” में हिंदू धर्म और इस्लाम को एक ही सूरज की दो अलग-अलग किरणें बताया है।

तीसरे मुग़ल सम्राट जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर (1556-1605) के शासनकाल के अंत में, ख़्वाजा बाक़ी बिल्लाह ने 1603 में भारत में नक्शबंदी सिलसिले की स्थापना की। मुग़ल बादशाह ज़हीरुद्दीन मुहम्मद बाबर ख़्वाजा उबैदुल्लाह के अनुयायी थे जिनका संबंध मध्य एशिया के ताशकंद के नक्शबंदी सूफ़ी सिलसिले से था। शेख़

अहमद सरहिंदी (मृत्यु 1624) सुहरवर्दी सिलसिले के एक महान सूफ़ी हैं। हज़रत सरहिंदी ने इस्लाम में प्रचलित ग़ैर-इस्लामी रीति-रिवाजों को साफ़ करने के लिए अभियान चलाया। वह बादशाह अकबर के घोर विरोधी थे। जब राजा अकबर ने उन्हें इबादतख़ाने (आराधनालय) में धार्मिक विषयों पर चर्चा करने के लिए आमंत्रित किया, तो उन्होंने साफ़ इनकार कर दिया। शेख़ सरहिंद वहदतुल-वुजूद के क़ायल नहीं थे, इसीलिए उन्होंने वहदतुश-शुहूद के दर्शन पर जोर दिया। उनका तर्क था कि यह कहना बिल्कुल ग़लत है कि ख़ुदा हर जगह मौजूद हैं, बल्कि यह कहा जाना चाहिए कि हर चीज़ ख़ुदा की अभिव्यक्ति है।[6]

भारत में मुस्लिम जनसंख्या में वृद्धि के कारण यहाँ पहले से मौजूद अन्य संस्कृतियों और धर्मों के अनुयायियों के साथ मधुर संबंध बनाना अपरिहार्य हो गया था। इस काम में सूफ़ी सबसे आगे थे, न कि मुस्लिम सुल्तान और राजकुमार। इस सामाजिक मिश्रण के परिणामस्वरूप एक नये वातावरण की स्थापना हुई और एक नयी सभ्यता का जन्म हुआ, जिसे गंगा-जमुनी सभ्यता के नाम से जाना जाता है। इस नई सामाजिक व्यवस्था में हर धर्म, हर संप्रदाय और हर विचारधारा को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। इस नई गंगा-जमुनी सभ्यता को बढ़ावा देने में सूफ़ियों की भूमिका पर प्रकाश डालते हुए अतींद्र नाथ बोस कहते हैं:

> "इस्लाम ने भारत के पश्चिमी तट पर सबसे पहले क़दम रखा। सूफ़ी समानता का संदेश लेकर आये। वह उन सभी बंधनों और अंधविश्वासों से मुक्त थे

> जिनसे शास्त्रीय भारतीय और इस्लामी विचार में गतिरोध पैदा हो गया था। रूढ़िवाद के विपरीत, नई सामाजिक व्यवस्था ने रचनात्मक शक्तियों को सामने लाते हुए मुरझाए हुए भारतीय समाज में नई जान फूंक दी। मानवीय मूल्यों पर आधारित एक नये दर्शन का उदय हुआ, जिसमें मानव आत्मा की आध्यात्मिकता, प्रेम की सार्वभौमिकता और मानवीय भावनाओं के तत्व शामिल थे।"[7]

सूफ़ीवाद के हिंदू और मुस्लिम सिद्धांत

हिंदू और इस्लामी सूफ़ीवाद के मौलिक विचार काफ़ी समान हैं। अल-बैरूनी ने हिंदू और इस्लामी सूफ़ीवाद की तुलना की और पाया कि समकिया और सूफ़ियों की स्वर्ग के बारे में एक ही अवधारणा थी। इसी प्रकार मोक्ष और निजात के सिद्धांत में भी कोई अंतर नहीं है और बायज़ीद बिस्तामी और पतंजलि में वर्णित वहदतुल-वुजूद वास्तव में एक ही हैं।[8]

अद्वैत-वेदांत और वहदतुल-वुजूद एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। मूलभूत मतभेदों के बावजूद दोनों का सार यह है कि ईश्वर एक है लेकिन अन्य प्राणी उसकी अभिव्यक्तियाँ हैं। वेदों में इसके लिए प्रयुक्त शब्द हैं: विवर्त, प्रभास, प्रतिबिम्ब, जिनके हू-बहू शब्द इस्लामी सूफ़ीवाद में तजल्ली, ज़ुहूर, अक्स और नुमूद हैं। सूफ़ीवाद में पवित्र आत्मा को हम-अस्त या अनल-हक़ कहा जाता है, जबकि वेदांत में इसका शब्द तत्वमसि या अहं ब्रह्मास्मि है। ध्यान का समानार्थक

मअरिफ़त है और जिस मार्ग से इसे प्राप्त किया जाता है उसे क्रमशः मार्ग और तरीक़ा कहा जाता है। विलायत के विभिन्न चरणों को मक़ामात या भूमिका कहा जाता है। फ़ना और बक़ा के समतुल्य समाधि और मुक्ति हैं। नीचे वेदांत और सूफ़ीवाद में प्रचलित कुछ शब्दों को उद्धृत किया गया है:

निर्गुण ब्रह्म - ज़ात अल-मुतलक

व्यक्त-अव्यक्त - ज़ाहिर-बातिन

निरूपाहिका सुपाधिका - मुतलक़, मुक़य्यद

साई और सत्यम - हक़ व हक़ीक़त

साधक और सिद्ध - सालिक और वासिल

ध्यान और धारणा - ज़िक्र व मुराक़बा

सत्यासा सत्यम्- हक़ीक़त अल-हक़ाइक़

ज्योतिज़्म ज्योति - नूर अल-अनवार

कितना सुंदर संयोग है कि इमाम अल-ग़ज़ाली का सांसारिक शिक्षा और धार्मिक शिक्षा के बीच अंतर, हुजवेरी का मानवीय ज्ञान और दिव्य ज्ञान आदि उपनिषद में भी मौजूद हैं।[9]

ऐसा माना जाता है कि इस्लामी सूफ़ीवाद की शर्तें हिंदू दर्शन में तब आईं जब शंकराचार्य (लगभग 820ई.) ने वेदांत को व्यवस्थित किया और रामानुज (लगभग 820ई.) ने भक्ति का संकलन किया। बार्थ के अनुसार, दक्कन के जिन क्षेत्रों में अरब व्यापारी 8वीं शताब्दी से

बारहवीं शताब्दी के बीच बसे, उन्हीं क्षेत्रों से शंकर, रामानुज, अनंततीर्थ और बसव का उदय हुआ।[10]

लेकिन कुछ इतिहासकार इस सिद्धांत को सही नहीं मानते कि शंकर इस्लामिक सूफ़ीवाद से प्रभावित थे क्योंकि इसका उल्लेख वेदों और उपनिषदों में पहले से ही है। शंकर तो बस उन पर प्रकाश डाल रहे थे। भट्टाचार्य का विश्लेषण सही प्रतीत होता है जब वे कहते हैं:

> "हिंदू धर्म पर ईसाई और इस्लाम धर्म के प्रभाव की सटीक सीमा का अनुमान लगाना मुश्किल है। हालाँकि, जब मुसलमान दक्कन में बस गए, तो निश्चित रूप से इसने हिंदू धर्म में भी धर्मशास्त्र को जन्म दिया, जिसके निशान शंकर के बाद के कई लेखकों के लेख में देखे जा सकते हैं।"[11]

इस्लामी सूफ़ीवाद के सिद्धांत इतने प्रभावशाली थे कि कट्टर हिंदू ब्राह्मण भी उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। प्रोफ़ेसर सुनीति कुमार चटर्जी के अनुसार:

> "सोलहवीं शताब्दी में लिखी गई चैतन्य की जीवनी से पता चलता है कि पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में ब्राह्मणों ने ख़ुद में कुछ बदलाव करते हुए इस्लामी जीवन शैली को अपनाना शुरू कर दिया था जैसे दाढ़ी बढ़ाना, तपस्या करना, फ़ारसी और मसनवी पढ़ना आदि।"[12]

सूफ़ी अक्सर राजाओं के अन्यायपूर्ण व्यवहार के लिए उनकी आलोचना करते थे और उन्हें न्यायप्रिय होने तथा अपनी प्रजा के साथ बेहतर व्यवहार करने के लिए प्रोत्साहित करते थे। जब सुल्तान सिकंदर लोधी (1498-1517) ने हिंदू मंदिरों को तोड़ा तो मियां अब्दुल्ला अजोधनी ने उसका कड़ा विरोध किया। जब मुहम्मद बिन तुग़लक़ ने ख़ुद को सुल्तान-ए-आदिल की उपाधि दी, तो शेख़ शहाबुद्दीन हक़ ने उनकी आलोचना की और कहा, **"एक अत्याचारी ख़ुद को आदिल कैसे कह सकता है?"** हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया ने जीवन भर सुल्तानों और राजकुमारों से परहेज़ किया। उनके जीवनकाल में सात सुल्तान दिल्ली आए, लेकिन वह उनमें से किसी से भी मिलने नहीं गए। जब सुल्तान अलाउद्दीन ख़िलजी ने हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के ज़ियारत (दर्शन) की योजना बनाई और उन्हें इसके बारे में पता चला तो उन्होंने कहा कि मेरी ख़ानक़ाह में दो दरवाज़े हैं, यदि सुल्तान एक से प्रवेश करेगा तो मैं दूसरे से निकल जाऊँगा। औरंगज़ेब आलमगीर ने शेख़ अब्दुर्रहमान को जागीर दी लेकिन उन्होंने लेने से इनकार कर दिया।[13]

सभी धर्मों के लोग बिना किसी धार्मिक भेदभाव के ख़ानक़ाहों में शरण लेते थे। ख़ानक़ाह के दरवाज़े उन सभी के लिए हमेशा खुले रहते थे जो किसी भी समय ख़ुद को सूफ़ियों के साथ जुड़ने के इच्छुक हों। जब कुंभदेव और बहराम ख़ान, मुहम्मद शाह बहमनी से हार गए तो उन दोनों ने ज़ैनुद्दीन दाउद की ख़ानक़ाह में शरण ली।[14]

सूफ़ियों ने हिंदू धर्म और दर्शन का गहन अध्ययन किया। अमीर ख़ुसरो ने हिंदू रीति-रिवाजों को इन शब्दों में परिभाषित किया है:

“अरे! तुम हिन्दू की पूजा पर कटाक्ष करते हो, उससे यह भी सीखो कि इबादत कैसे की जाती है।”[15]

शेख़ मोहम्मद गेसू दराज़ हिंदू परंपराओं के अच्छे जानकार थे और संस्कृत के विद्वान भी थे। ग्वालियर के मुहम्मद ग़ौस के हिंदू साधुओं और योगियों से अच्छे संबंध थे और उन्होंने हिंदू दर्शन का भी अध्ययन किया था। योग पर लिखी पुस्तक अमृत कुंड का फ़ारसी में अनुवाद मुहम्मद ग़ौस ने ही किया था। मीर अबुल क़ासिम ने योगवशिष्ठ लिखी और इसके कठिन शब्दों की वर्णमाला सूची भी तैयार की। शाहजहाँ का बेटा दारा शिकोह हिन्दू साधुओं का बहुत सम्मान करता था।[16]

दारा शिकोह ने पचास उपनिषदों का फ़ारसी में अनुवाद किया और वेदांत पर संस्कृत में एक ग्रंथ लिखा। इसी प्रकार, उन्होंने फ़ारसी में वेदांत और सूफ़ीवाद पर कई किताबें लिखीं। दारा शिकोह की कृति मजमउल-बहरैन में हिंदू धर्म और इस्लाम के सामान्य मूल्यों की चर्चा की गई है। शेख़ मुहम्मद अफ़ज़ल सरकश पच्चीस दिनों तक एक हिंदू साधु के आश्रम में रहे और हिंदू धर्म और इस्लाम के बीच समानता का अध्ययन किया। सत्रहवीं शताब्दी के महान सूफ़ी शेख़ हुसैन अंबर ख़ान ने मराठी में भगवद्-गीता की तफ़सीर (विवेचना) लिखी थी।[17] कुछ सूफ़ी भगवान राम और भगवान कृष्ण को ईश्वर का दूत मानते हैं। यहां तक कि हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के परिवार से ताल्लुक रखने वाले ख़्वाजा हसन निज़ामी ने भी **“भारत के दो पैग़ंबर: राम और कृष्ण”** शीर्षक से एक किताब लिखी है। सूफ़ी

कवि मिर्ज़ा मज़हर जान-ए-जानाँ (1699-1780) वेदों को ईश्वरीय मानते थे और हिंदुओं को भी अहले-किताब में से एक मानते थे। शाह वलीउल्लाह के बेटे शाह अब्दुल अज़ीज़ भगवद गीता से बहुत प्रभावित थे, इसीलिए वे कृष्ण को वली कहकर बुलाते थे।[18]

ग़ैर-मुस्लिम भी सूफ़ियों का बहुत आदर करते थे और उनके प्रति अगाध श्रद्धा रखते थे। सैयद सुल्तान अहमद के बड़ी संख्या में ग़ैर-मुस्लिम अनुयायी थे। ग़ैर-मुस्लिम उन्हें लक्खी दाता के नाम से बुलाते थे। लाल शाहबाज़ क़लंदर को ग़ैर-मुस्लिम अनुयायियों द्वारा राजा भारती के रूप में संबोधित किया जाता था। जब सिंध में कल्होड़ा राजाओं के उत्पीड़न के कारण ग़ैर-मुस्लिम पलायन कर रहे थे, तो शेख़ इनायत शाह ने इन परेशान हिंदुओं को अपनी ख़ानक़ाह में आश्रय दिया।[19] बाबा फ़रीद का हर धर्म के लोग सम्मान करते थे। शायद यही कारण है कि बाबा फ़रीद के नातिया कलाम को पंजाबी भाषा में अनुवाद करके सिखों के पवित्र ग्रंथ आदि ग्रंथ में शामिल किया गया है। छत्रपति शिवाजी महाराज और उनके परिवार का दक्कन के सूफ़ियों से विशेष संबंध था। जैसा कि कहा जाता है, शिवाजी के दादा मालोजी की कोई संतान नहीं थी। इसलिए वह दक्कन के प्रसिद्ध सूफ़ी शाह शरीफ़ की सेवा में उपस्थित हुए और उनसे बेटे के जन्म के लिए प्रार्थना करने का अनुरोध किया। शाहजी की दुआ से मालोजी के दो बेटे हुए थे। मालोजी ने अपने दोनों पुत्रों का नाम शाहजी के नाम पर शाहजी और शरीफ़जी रखा। शिवाजी शाहजी के पुत्र हैं।[20]

इस्लाम में तौहीद (एकेश्वरवाद) की आस्था ने हिंदुओं को सबसे अधिक प्रभावित किया। प्रो. ख़लीक़ अहमद निज़ामी के अनुसार, **"इस बात को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता कि चौदहवीं और पंद्रहवीं शताब्दी में भक्ति आंदोलन का नेतृत्व हिंदुओं के निचले वर्गों ने किया था।"** ये वे लोग थे जो मुस्लिम सूफ़ियों और ख़ानक़ाही जीवन से बहुत प्रभावित थे। हिंदू धर्म के लंबे इतिहास में संभवतः यह पहली बार था कि चैतन्य, कबीर, नानक, धन्ना, दादू आदि जैसी महान हस्तियों का जन्म समाज के निचले तबके से हुआ था। भक्ति आंदोलन से जुड़ा शायद ही कोई साधु हो जिसने किसी न किसी ख़ानक़ाह में समय न बिताया हो।[21] मूर्तिपूजा, बहुदेववाद और जातिवाद का प्रबल विरोध और समानता के व्यावहारिक उदाहरण के कारण हिंदू भक्त स्वतः ही ख़ानक़ाहों की ओर आकर्षित हो गए और यहीं से प्रेरित होकर वे हिन्दू धर्म के सुधार की ओर मुड़ गये।

उन्होंने धर्म पर ब्राह्मणों के एकाधिकार के विरुद्ध आवाज़ उठाई। सूफ़ियों की तरह, भक्ति आंदोलन के नेताओं ने भी ज्ञान के बजाय भक्ति यानी पूजा पर ज़ोर दिया और ग़ैर-ब्राह्मणों को भी अपने साथ शामिल किया। एक ओर सूफ़ियों की शिक्षाओं और दूसरी ओर भक्ति आंदोलन के फलस्वरूप आम लोगों में भाईचारा पैदा हो गया। शांतिमोहन सेन के अनुसार:

> **"हिन्दू धर्म और इस्लाम अपनी-अपनी धार्मिक पुस्तकों और मान्यताओं में जकड़े हुए धर्म हैं। ये नदी के दो किनारे हैं जो आपस में कभी नहीं मिलते। तो फिर इस ख़ाली जगह को कौन**

भरेगा? रूढ़िवादी हिंदू और मुस्लिम दोनों ही इस अच्छे काम के लिए अयोग्य थे, इसलिए हिंदू भक्तों और मुस्लिम सूफ़ियों ने इस गहरी खाई को पाट दिया।"[22]

इससे और इस्लाम के तेजी से प्रसार ने सूफ़ियों को अपना मिशन जारी रखने की ताक़त दी, जिसके परिणामस्वरूप हिंदुओं और मुसलमानों के बीच अच्छे संबंध बने। इस्लाम की धार्मिकता, उच्च मूल्य, समानता और भाईचारे ने हिंदू समाज पर गहरी छाप छोड़ी। जब सूफ़ियों ने क्षेत्रीय भाषाओं में आध्यात्मिक संदेश प्रस्तुत किया, तो इसने दोनों समुदायों को एक-दूसरे के बहुत क़रीब ला दिया।

सिंधी में शाह लतीफ़ (1690 ई.), पंजाबी में बाबा फ़रीद, सैयद शाह वारिस, सुल्तान बाबा और अली हैदर, हिंदी और उर्दू में अमीर ख़ुसरो, मुल्ला दाऊद, गेसू दराज़ और मलिक मुहम्मद जायसी, बंगाली में जलालुद्दीन तबरेज़ी, दौलत क़ाज़ी, गुजराती में शेख़ गंजुल-आलानी, सैयद बुरहानुद्दीन और कश्मीरी में महमूद ग़नी और ख़्वाजा हबीबुल्लाह ने उत्कृष्ट कार्य किए हैं।

सूफ़ियों ने संगीत के क्षेत्र में भी अच्छी सेवाएँ प्रदान की हैं। कुछ मनीषियों ने महसूस किया कि संगीत के माध्यम से ईश्वर का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। महफ़िले-समा में अमीर ख़ुसरो ने पहली बार संगीत का प्रयोग किया। उन्हें ढोलक और सितार का आविष्कार करने का श्रेय दिया जाता है और उन्होंने क़ौल, क़लबाना, नक़्श, गुल, तराना और ख़्याल जैसी कम से कम छह नई शैलियाँ पेश कीं।

सैयद निज़ामुद्दीन मधु नाइक और मख़दूम बहाउद्दीन बुन्नैस ने संगीत पर कई किताबें और पत्रिकाएँ लिखीं। संगीत की शिक्षा के लिए विभिन्न स्थानों पर स्थानीय शासकों के संरक्षण में विद्यालय स्थापित किये गये थे।

References:

[1] A. Nizami, *Some Aspects of Religion and Politics in India During Thirteenth Century*, Delhi 1974, p. 261

[2] Ibid. 261

[3] For details, Nizami, pp. 182-83

[4] K.A Nizami, p. 197

[5] Hasna Begum, Contributions of Muslim Saints lo Indian Culline, *Spirit of India* Vol II, p. 117

[6] Burhan Ahmad, *Mujaddid's, Conception of Tuwhid*, Lahore 1940

[7] Adindranath Bose, *Cultural Heritage of India*, Voi. Ili, pp. 460-2

[8] Al Biruni, *Kitab al Hindi, translation, (Al Biruni's India)*, London, 1910 pp. 87-88

[9] W. Husain, *Conception of Divinity in Islam and Upanishads*, Calcutta 1939

[10] A. Barth, *The Religions of India*, London 1921, pp. 209-11

[11] V. N. Bhattacharjee, Majumdar, ed.,*The Struggle for Empire*, Bombay 1957, p. 459

[12] Suniti KumarChattarji, *Spirit of India*, Voi. I, New Delhi, 1972, pp.91

[13] FathullahMujtabi; *Aspects ofHindu Muslim Cultural Relations*, Delhi 1978, pp 100-101

[14] *Tarikh - i- Ferishta*, Voi. I, p 294

[15] Nizami, op. cit., p. 263

[16] Fathullah Mujtabi, op. cit., P. 102

[17] Ibid.

[18] Ikram, Rind-i-Kawthar, Karachi, nd. 394, A. K. Aziz, Studies in *Islamic Culture in Indian Environment*, Oxford,1964, p. 139

[19] Kshithi Mohana Sen, *Medieval* Mystic of North India, *Cultural Heritage of India*, Vol. IV, p. 389

[20] Fathullah Mujtabi, p. 106

[21] K.A Nizami, p. 264

[22] *Cultural Heritage of India*, Vol.IV, p. 378

ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन
एक नई पहल

हिंदुस्तान जन्नत निशान, जो मज़हबी, भाषायी एवं सांस्कृतिक विविधताओं का देश है और 'अनेकता में एकता' से जिसकी पहचान होती है। इस महान देश का इतिहास मानव-प्रेम की मिसालों से भरा पड़ा है। जिसमें शक्ति और शान्ति भक्तों के गीतों का नतीजा है और हिंदुस्तान हमेशा इस बात का गवाह रहा है कि धरती के बासियों की मुक्ती प्रीत में है।

पता नहीं कि दुनिया को किसकी बुरी नज़र लग गई कि सामाजिक निकटता दूरियों में बदलने लगी हैं। सच्चाई तो यही है कि इस देश की अधिकांश लोग आज भी इस अलगाव तथा विभाजन का हिस्सा बनने के लिए तैयार नहीं है, परन्तु बहुसंख्यक अगर ख़ामोश रहती है तो उसका अस्तित्व गहरे अन्धकार के गर्त में समा जाता है। वर्तमान में अधिकांश लोग समाज एवं मानवता के दुखों का निवारण करने के बजाय केवल और केवल अपने आप में व्यस्त हैं। वह मनुष्य जो कभी जनसाधारण की आकांक्षा का स्वर हुआ करता था आज अपने आप तक ही सीमित होकर

रह गया है। इन हालात में हाथ में हाथ धरे बैठा नहीं रहा जा सकता और इसलिए ज़रूरी है कि एक बार उन सभी प्रतीकों को फिर से ज़िंदा किया जाए जो "मुहब्बतों की गाथा" और "प्रेम के ढाई अक्षर" से एक दूसरे को जोड़े रहे जिनके नज़दीक मादरे-वतन, यहाँ पैदा और बसने वाले, इसके दरियाओं का पानी पीने वाले, इसके खेतों में पैदा होने वाले अन्न से अपनी भूख मिटाने वालों को फिर इस बात का एहसास दिलाया जाए कि उनका मज़हब, ज़बान और इलाक़ा कुछ भी हो सकता है लेकिन माँ और माटी से उनका रिश्ता इस दुनिया के पैदा करने वाले और चलाने वाले रब की मर्ज़ी का नतीजा है और जिसमें रब राज़ी उसमें सब राज़ी रहें तो ही बेहतरी और भलाई है।

हिंदुस्तान में एक दूसरे को जोड़ने वालों का यदि उल्लेख किया जाए तो उनके नाम और काम गिनाने में कोई देर न लगेगी लेकिन अगर एक दूसरे को एक दूसरे से अलग करने वालों और बाँटने वालों के नाम पूछे जाएँ तो उसे उनके नाम याद करने और बताने में बड़ी मुश्किल आएगी।

इन सबके बावजूद आज फिर यह दूरियाँ, यह टकराव और हिंसा बार-बार क्यों देखने को मिल रही है। इसका सीधा-साधा जवाब यही है कि हमने उन्हें भुला दिया है जिन्हें हमें याद रखना चाहिए था। देवी-देवताओं, पैग़ंबरों, पीरों और ऋषियों-मुनियों के त्याग, तपस्या, समर्पण और सेवाभाव को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है। उनकी शिक्षाओं तथा उनके उपदेशों को एक बार फिर लोगों तक पहुँचाया जाना चाहिए।

यही वह सोच और फ़िक्रमंदी है जिसके तहत **'ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन'** की स्थापना की गई है। हज़रत अमीर ख़ुसरो मध्यकालीन भारत के एक ऐसे लोकप्रिय, मनमोहक एवं सर्वव्यापी व्यक्तित्व हैं, जिन्हें सदियाँ गुज़रने के बाद भी याद रखा गया और हमेशा याद रखा जाएगा। वह सूफ़ी भी थे और सिपाही भी, कवि भी थे और संगीतकार भी, इतिहासकार भी थे और इतिहास बनाने वाले भी। उनके व्यक्तित्व की सार्वभौमिकता और

विशिष्टता ने उन्हें न केवल विभिन्न गुणों का वाहक बनाया था बल्कि बहुआयामी विशेषताओं से परिपूर्ण किया था। मध्यकालीन भारतीय इतिहास के बड़े-बड़े नामियों के निशान मिट गए लेकिन हज़रत अमीर ख़ुसरो आज भी न सिर्फ़ हमारी तारीख़ का एक हिस्सा हैं बल्कि हर इंसान के दिल व दिमाग़ में रचे बसे हैं। वे लोगों के दिलों में इस प्रकार रचे-बसे हैं कि ख़ुशी के लम्हे हों या दुख के पल, हज़रत अमीर ख़ुसरो का नाम तथा उनकी रचनाएँ सदैव अपनी प्रासंगिकता के साथ हमारे साथ हैं।

इस गुत्थी को तो मनोवैज्ञानिक ही सुलझा सकते हैं कि हज़रत अमीर ख़ुसरो ने अपनी विभिन्न दरबारी एवं ख़ानक़ाही गतिविधियों के बीच किस प्रकार संतुलन स्थापित किया। यह प्रश्न इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि ख़ुसरो ने यह संतुलन अपने व्यक्तित्व के खरेपन के साथ स्थापित किया था। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनका हर जुड़ाव और हर किरदार खुली पुस्तक की तरह सब पर ज़ाहिर था और इस खुलेपन के बावजूद ज़िंदगी भर कामयाब रहे। सच्चाई से भरपूर चिंतन हज़रत अमीर ख़ुसरो के व्यक्तित्व को हमारे समक्ष एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत करता है।

इस भारतीय तुर्क का देश-प्रेम न केवल मिसाली है, बल्कि क़ाबिले-रश्क भी है। ख़ुसरो के नज़दीक भारत की धरती अदन की जन्नत है। यहाँ के लोग प्रत्येक रंग व रूप में उन्हें प्रिय हैं। यहाँ के दरबारों के समक्ष ईरान, तूरान और ख़ुरासान के दरबार फीके दिखाई देते हैं। यहाँ के लोग कृषि, उद्योग, व्यापार के साथ-साथ विज्ञान एवं कला के प्रत्येक क्षेत्र और सैन्य प्रशिक्षण के प्रत्येक रूप में अद्भुत एवं अनूठे हैं। एक पक्का मुसलमान होने के बावजूद भी उन्हें भारत की सभी विचारधाराएँ प्रिय हैं। वे कहते हैं कि ''यद्यपि भारतवासी हमारे जैसा धर्म नहीं रखते, परन्तु उनकी अधिकतर मान्यताएं हमारे जैसी हैं।''

आज ज़रूरत इस बात की है कि हम भारतवासी, भारत की प्रत्येक परंपरा को, चाहे वह धार्मिक हो अथवा सांस्कृतिक अथवा भाषायी, शैक्षिक हो

या साहित्यिक, उसे हज़रत अमीर ख़ुसरो की तरह देखें, अपनाएं और उसके लिए अपने आप को समर्पित कर दें। हज़रत अमीर ख़ुसरो, जिनकी माँ भारतीय थीं और पिता तुर्क, एक ऐसे भारतीय हैं जो न केवल भारत की महानता के तराने गाते हैं बल्कि अपने आपको इस मिट्टी का इस प्रकार अभिन्न अंग बनाना चाहते हैं जैसे यह मिट्टी ही सब कुछ हो। देश की मिट्टी से इस लगाव और प्रेम को अल्ताफ़ हुसैन हाली ने इस तरह बयान किया है:

तेरी इक मुश्त-ए-ख़ाक के बदले
लूँ न हर्गिज़ अगर बहिश्त मिले

ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन देशभक्ति, मानव प्रेम तथा प्रकृति से निकटता को अपनाने और सभी प्रकार के भेदभाव और नफ़रत से ऊपर उठकर मुहब्बत को आम करना चाहती है। जिसको शैख़ इब्राहीम ज़ौक़ ने यूँ बयान किया है:

गुल्हाए-रंगा-रंग से है ज़ीनत-ए-चमन
ऐ 'ज़ौक़' इस जहाँ को है ज़ेब इख़्तेलाफ़ से

लेखक के बारे में

डॉ. हुसैन रंदाथानी सूफ़ी विचारधारा के जाने-माने इतिहासकार और लेखक हैं। उन्होंने भारतीय इतिहास पर विस्तार से लिखा है। वह दक्षिण भारत के एक तटीय शहर मलप्पुरम से हैं, जो केरल राज्य में स्थित है। उन्होंने एमईएस कॉलेज, मन्नारक्कड़ और कुन्हली मार्कर सेंटर, कालीकट विश्वविद्यालय में इतिहास के प्रोफ़ेसर के रूप में कार्य किया है। वह एम. ई. एस. कॉलेज, वेलाचेरी के प्राचार्य रहे हैं। वर्तमान में, वह मालाबार अनुसंधान और विकास संस्थान के निदेशक हैं। सूफ़ीवाद, मपिला मुस्लिम, भारतीय इतिहास और इस्लाम पर उनकी कई किताबें अंग्रेज़ी और मलयालम में प्रकाशित हो चुकी हैं।

www.hussainrandathani.in